करण और अंगहार : समीक्षात्मक दृष्टिकोण

यास्मीन सिंह
कथक नृत्यांगना–रायगढ़ घराना
पीएच.डी. स्कॉलर

सारांश

“ नाट्यचार्यों ने हस्त मुद्राओं एवं पाद–विन्यास की सहायता से करणों का निर्माण कर, विभिन्न करणों की सहायता से अंगहार, तत्पश्चात् रेचक, पिण्डीबंध आदि के माध्यम से नृत्त एवं नृत्य की उत्पत्ति की, जो सभी शास्त्रीय नृत्यों के मूल में समाहित है। करणों के माध्यम से अन्य अंगहारों की भी कल्पना की जा सकती है तथा भरत एवं अन्य नाट्याचार्यों द्वारा दिये गये सिद्धान्त के आधार पर अन्य करणों की भी उत्पत्ति संभव है। इन सभी के माध्यम से असंख्य करण एवं अंगहारों की कल्पना नृत्यकला के क्षेत्र में नयी संभावनाओं का सूत्रपात कर सकेंगी है, ऐसा कहा जा सकता है। ”

संकेत शब्द

1. भरतकृत नाट्यशास्त्र (*The Natyasastra of Bharat*)
2. करण (*The Karanas*)
3. अंगहार (*Angahara*)
4. कला (*Art*)
5. संगीतकला (*The Art of Music*)
6. विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन (*Critical and Comparative Study*)

* * *

भारतीय नाट्य और नृत्यकला में भरत मुनि द्वारा नाट्यशास्त्र की महति भूमिका है, क्योंकि यह ग्रंथ भारतीय नाट्य–नृत्यादि कलाओं को सैद्धान्तिक आधार प्रदान करने वाला संभवतः प्रथम ग्रंथ है। यद्यपि वेद–पुराण और अन्य संस्कृत वाङ्मयों में भी नाट्य–नृत्यादि विषयक तथ्य प्राप्त होते हैं तथापि इन कलाओं की जितनी सटीक व्याख्या, सिद्धान्त, प्रयोग–विनियोग, निर्मिति एवं निष्कर्ष संबंधी निर्देश नाट्यशास्त्र में प्राप्त होते हैं, वह इसके पूर्व अन्यत्र प्रायः प्राप्त नहीं होते है। इसी प्रकार सैद्धान्तिक रूप से भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की परिकल्पना भी इसी ग्रंथ में प्राप्त होती है। भरत के पूर्व भी रस और भाव प्रचलित रहे होंगे, यह तो निश्चित है, किन्तु भरत ने कला में प्रयोग के आधार पर इसकी उत्पत्ति एवं विभिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। उल्लेखनीय है, कि नाट्यशास्त्र में ‘सौन्दर्य’, ‘सौन्दर्यशास्त्र’, ‘सौन्दर्यबोध’ जैसे शब्द प्रायः प्राप्त नहीं होते। इनके स्थान पर भरत ने ‘शोभा’ शब्द का प्रयोग किया है। वर्तमान प्रचलित उक्त शब्दों के प्रयोग के बिना ही भरत ने रस–सिद्धान्त की विस्तृत और परिष्कृत व्याख्या प्रस्तुत की है। इस दृष्टि से भरत का नाट्यशास्त्र विलक्षण और अद्भुत ग्रंथ है।

नाट्यशास्त्र के बाद अनेकानेक आचार्यों ने इस अद्भुत ग्रंथ की व्याख्या तथा अनुवाद प्रस्तुत करने के साथ–साथ इस ग्रंथ में वर्णित विभिन्न विषयों को पृथक्–पृथक् ग्रंथों के रूप में स्थापित किया और इस प्रकार एक परम्परा स्थापित हुई, जिसे 'नाट्यशास्त्रीय परम्परा' कहा गया। निःसन्देह परवर्ती आचार्यों ने अपने ग्रंथों की रचना हेतु नाट्यशास्त्र को ही आधार स्वरूप ग्रहण किया। इन ग्रंथों में अभिनयदर्पण, दशरूपकम्, नृत्याध्याय, भावप्रकाशनम्, नृत्यनिर्णय, संगीतरत्नाकर, साहित्यदर्पण आदि अनेक नाट्यशास्त्रीय, काव्यशास्त्रीय और संगीतशास्त्रीय ग्रंथों की विस्तृत सूची है, जिन्होंने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से कहीं–न–कहीं भरत मत को स्वीकार किया है अथवा उल्लेख किया है। यह बात पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है। साथ ही यह भी स्पष्ट है, कि नाट्यशास्त्र अपने रचनाकाल में प्रसिद्ध रहा होगा और वर्तमान में भी इसकी प्रसिद्धि में क्वचित मात्र परिवर्तन भी नहीं आया है।

वैसे तो नाट्यशास्त्र में नाट्य–नृत्यादि अनेक विषयों का प्रतिपादन किया गया है, जो इसके छत्तीस अध्यायों में क्रमशः वर्गीकृत है। नृत्यकला की दृष्टि से नाट्यशास्त्र में वर्णित आंगिकाभिनय की चर्चा, प्रयोग एवं अवधारणायें प्रसिद्ध रही हैं। आचार्य ने शारीरज, मुखज और चेष्टाकृत जैसे वर्गीकरण के माध्यम से मानव शरीर के विभिन्न अंगों का नृत्यात्मक स्वरूप एवं प्रयोग बताया है। इन्हीं अंगों के माध्यम बनी विभिन्न मुद्राओं से करणों की निर्मिति और करणों से अंगहार बनने की विधि का विस्तृत विवेचन भी किया गया है।

भरत के अनुसार– 'नृत्य में हस्त तथा पादों का मिलकर हलन–चलन करने को 'करण' कहते हैं। दो करणों (के संयोग) से एक 'मात्रिका' बनती है और दो, तीन या चार मात्रिकाओं से एक 'अंगहार' बनता है। तीन करणों के द्वारा एक 'कलापक' तथा चार से एक 'मण्डल' (षण्डक) बनता है और पांच करणों से 'संघातक'। इस प्रकार से अंगहार; छः, सात, आठ तथा नौ करणों के मेल से बनते हैं।'[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि हस्त मुद्राओं और पाद– विन्यास में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न मुद्राओं से करणों की निर्मिति होती है तथा इन्हीं करणों के माध्यम से अंगहार बनाये जाते हैं। भरत के मतानुसार– 'अंगहारों द्वारा निष्पन्न होने वाला एवं करणों पर आश्रित अभिनय 'नृत्त' कहलाता है।'[2] यहाँ आचार्य द्वारा कहा गया है कि–

"हस्तपादसमायोगो नृत्यस्य करणं भवेत्।।30।।"[3]

एवं

"अहिंरनिविष्पन्नं नृत्तन्तु करणाश्रयम्।"[4]

करण के संबंध में विद्वानों का मत है कि– 'स्थिति (अवस्थान या खड़े होने की दशा) और गति (अर्थात् पैरों की चाल) जैसे दो तत्वों के आधार पर करण प्रवृत्त हुआ। इनमें भी अवस्थान की दशा में स्थान को और गति में चारियों का प्रयोग होता है। इसमें शरीर के ऊपरी भाग या अंग के साथ गति में नृत्त हस्त एवं दृष्टियों का तथा स्थिति में पताका आदि असंयुत व संयुत हस्तों का प्रयोग होता है। इस कारण यद्यपि गति और स्थिति के सम्मिलित स्वरूप में करण माना गया है। किन्तु अंगहारों की रचना में करणों का विनियोजन शास्त्र व परम्परा संगत है। इसी कारण मान्य करणों की संख्या 108 ही है। भरतमुनि ने ये ही 108 करण बतलाये हैं, जिनकी शिक्षा उन्हें तण्डुमुनि से प्राप्त हुई थी। किन्तु परवर्ती काल में आचार्यों ने भी नवीन करणों की संकल्पना की है, जिनका उल्लेख मध्यकालीन लक्षण–ग्रंथों में प्राप्त होता है। भरतोक्त करण 'मार्गी' और अन्य आचार्यों द्वारा उद्धत करण 'देसी' कहे जाते हैं।'[5]

करणों के प्रयोग के संबंध में यह भी उल्लेख मिलता है कि– 'करणों के निर्माताओं या प्रयोक्ताओं को चाहिए कि वे बायें हाथ का प्रयोग अधिक करें। करणों में दाहिने हाथ को छाती पर रखें और वह करणों का अनुमागी हो। किसी नियम विशेष का निर्देश न करते हुए भी विद्वानों ने यह परिभाषा बताई है। जहाँ करण में चारी का उल्लेख न किया गया हो, वहाँ करण के पैर के अनुसार चारी की योजना कर लेनी चाहिए। अथवा हस्त संचालन के अनुसार पैर की सुन्दर रचना करनी चाहिए।'[6] इस संबंध में आचार्य भरत का मत है कि– 'प्रायः करणों में बायां हाथ छाती पर तथा दाहिना हाथ दाहिने पैर का अनुकर्त्ता होना चाहिए। जहाँ कमर तथा हाथ समान स्थिति वाले हों, मस्तक तथा बाजू भी ऐसे ही हों और छाती ऊँची उठाई जाये, तो उसे सौष्ठव कहते हैं। यह सौष्ठव सभी करणों में सौन्दर्य–विधान की दृष्टि से समायोजित करना चाहिए।'[7]

शास्त्रीय नृत्यों में प्रायः करणों का प्रयोग होना सहज ही है, क्योंकि आचार्यों के मतानुसार करणों के संयोग से अंगहार और अंगहारों में अन्य सभी तत्वों अर्थात्– अभिनय, चारी, गति आदि के संयोग से नृत्य प्रारंभ होता है या नृत्य की स्थिति उत्पन्न होती है। आचार्य द्वारा सर्वप्रथम 'तलपुष्पपुट हस्त' बताया गया है, जो पुष्पपुट हस्त (संयुत हस्त) और आयत मण्डल पाद के संयोग से निर्मित होता है। उक्त स्थिति तलपुष्पपुट करण बनने के प्रारंभ की स्थिति, अथवा मध्य की कोई स्थिति या फिर अंतिम स्थिति हो सकती है, क्योंकि भरत द्वारा इस करण में मुख्य रूप से अग्रतलसंचर पाद का प्रयोग किये जाने का निर्देश दिया है, जो पैर की चलायमान स्थिति है। अतः नृत्य में भी उक्त बातें समाहित हैं।

विभिन्न करणों के विषय में आचार्य भरत द्वारा दिये गये निर्देशों के आधार पर जो हस्त मुद्रायें एवं पाद–विन्यास स्थिर अवस्था (चित्रों या मूर्तियों अथवा नर्तकी द्वारा बनाये गये करण की भंगिमा) में दिखाया जाता है, वह वास्तव में चलायमान स्थिति है। नर्तकी द्वारा बनाये गये करण, मात्र प्रतीक

(Symbole or Posture) रूप में स्वीकर किये जा सकते हैं अथवा किये जाते रहे हैं। चूँकि इनका प्रयोग नृत्य (नृत्त) में किया जाता है, जो चलायमान स्थिति में ही संभव हो सकती है। संभवतः विद्वान आचार्यों द्वारा करणों के अध्ययन एवं अध्यापन की दृष्टि से करणों के चित्रों की कल्पना की गई होगी। वास्तविक रूप में करणों की चलित अवस्था को नृत्य के माध्यम से ही समझा जा सकता है।

करणों से संबंधित हस्त मुद्रायें व हस्त करण, पाद–विन्यास, चारी, मण्डल तथा गति आदि का विस्तार से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा इन्हीं के अनुसार करणों को बनाने का निर्देश प्रतिपादित किया गया है।

भरतानुसार इन्हीं 108 करणों के मेल से अंगहारों की निर्मिति की जाती है। 'करणों के योग से अंगहार निर्मित होते हैं। अंगहार शब्द का सामान्य अर्थ है– शरीर का हलन–चलन। आचार्य अभिनवगुप्त ने अंगहार शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है– अंगों को समुचित प्रकार से अन्य स्थानों पर रखना ही अंगहार है। यह शिवजी का 'हार' अर्थात् प्रयोग है अथवा अंग–निवृत्ति यानि अंगों की बनावट का हार या माला होने से ही यह अंगहार कहलाता है। संक्षेप में यह कह सकते हैं, कि अंगहार वह प्रधान नृत्य प्रकार है, जो संक्षिप्त करणों द्वारा निष्पन्न होता है। इस प्रकार यह अंग संचालन का एक सुनिश्चित अनुक्रम है। एकाधिक करणों के मेल से ही नृत्य का निर्माण होता है, जो संख्यागत आधिक्य के होने पर चलते हुए स्पष्ट स्वरूप को प्राप्त करता जाता है। इस प्रकार यहाँ सर्वत्र दो अधिक संख्या का मेल वांछित है। ये तीन करणों के मेल वाले भेद कलापक से लेकर नौ करणों के संघातक तक बनते हैं और इस प्रकार समुदाय बनाकर अंगहारों का निर्माण करते हैं। इस तरह से सभी अंगहार करणों से ही निष्पन्न होते हैं।

इस प्रकार अंगहार में करणों का प्रयोग होता है। कुछ आचार्यगण, इन अंगहारों में अभीहित अंगों एवं करणों का चारों दिशाओं में प्रस्तुतिकरण का निर्देश करते हैं। मुनि ने स्वयं भी परिवृत्त रेचित अंगहार के प्रसंग में इस ओर संकेतिक किया है। इस संदर्भ में यह भी बतलाया गया है, कि प्रत्येक करण सम्पन्न करने में जो समय लगेगा, उसको मिलाकर प्रमाणानुसार जो समय हो, वही एक अंगहार में लगने वाला समय होगा।'[8]

अर्थात् नाट्याचार्यों के मतानुसार एक से अधिक करणों के मेल से अंगहारों की निर्माण होता है। नाट्यशास्त्र (चतुर्थ अध्याय, श्लोक संख्या 19 से 27) में करणों के माध्यम से बनने वाले 32 अंगहारों के विषय में भरत ने निर्देश दिया है। भरत द्वारा निर्दिष्ट करण और इससे बनने वाले अंगहार की व्याख्या

को सूक्ष्मता से समझना आवश्यक है। भरत ने करणो से अंगहार बनाये जाने के पूर्व संख्या के आधार पर मात्रिका, कलापक, मण्डल बनाये जाने की बात कही है, जिसे निम्नानुसार समझा जा सकता है–

(A) दो करण = **मात्रिका**

(B) दो, तीन या चार मात्रिका = **अंगहार** (यहाँ दो, तीन और चार मात्रिका से तात्पर्य क्रमशः चार, छः और आठ करणों से है।)

(C) तीन करण = **कलापक**

(D) चार करण = **मण्डल**

(E) पांच करण = **संघातक**

(F) छः, सात, आठ और नौ करण = **अंगहार**

इसी प्रकार अंगहारों में करणों की संख्या के आधार पर यदि इन्हें पृथक् किया जाए, निम्नांकित स्थिति स्पष्ट होती है–

i. 3 करणों से बनने वाले अंगहारों की संख्या – 3
ii. 4 करणों से बनने वाले अंगहारों की संख्या – 5
iii. 5 करणों से बनने वाले अंगहारों की संख्या – 4
iv. 6 करणों से बनने वाले अंगहारों की संख्या – 4
v. 7 करणों से बनने वाले अंगहारों की संख्या – 5
vi. 8 करणों से बनने वाले अंगहारों की संख्या – 5
vii. 9 करणों से बनने वाले अंगहारों की संख्या – 2
viii. 10 करणों से बनने वाले अंगहारों की संख्या – 4

कुल – 32

भरत द्वारा निर्दिष्ट उक्त वर्गीकरण के आधार पर यदि अंगहारों पर दृष्टिपात किया जाये, तो ज्ञात होता है, कि 3 व 4 करणों से आचार्य ने एक ओर क्रमशः एक 'कलापक' व एक 'मण्डल' बनने की बात कही है और फिर अंगहार भी बनना बताया है। इसी प्रकार दो मात्रिकाओं (अर्थात् प्रत्येक में दो–दो करण, इस प्रकार 4 करणों) से भी अंगहार बनना बताया है। उक्त तालिकाओं का अवलोकन करें, तो ऐसे पांच अंगहार प्राप्त होते हैं, जिनकी निर्मिति 4 करणों अथवा दो–दो मात्रिकाओं से मिलकर हुई है। इसी प्रकार 5 करणों के मेल से जहाँ एक ओर संघातक बनना बताया गया है, वहीं पांच करणों से 5 अंगहार भी प्राप्त होते हैं। आचार्य ने 10 करणों से अंगहार बनाये जाने के विषय में स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है,

जबकि अंगहारों के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि 10 करणों से 4 अंगहार बनाये गये हैं। वहीं 6, 7, 8 एवं 9 करणों के योग से क्रमशः 4, 5, 5 एवं 2 अंगहार प्राप्त होते हैं, जो भरत द्वारा अंगहार निर्मिति से पूर्व दिये गये निर्देश का पालन करते हैं। ऐसे अंगहारों की कुल संख्या 16 है। वस्तुतः उक्त अध्ययन के आधार पर भरत द्वारा दिये गये अंगहारों पर दृष्टिपात करें, तो ज्ञात होता है, कि मूलतः 16 अंगहार स्पष्ट हैं, जबकि तीन करणों से 3 कलापक एवं 4 करणों से 5 मण्डल एवं 4 संघातक हैं। इसी क्रम में 10 करणों से 4 अंगहार हैं, किन्तु इनमें संख्या के आधार आचार्य द्वारा कोई चर्चा नहीं की गई है। यदि इन्हें भी अंगहार स्वीकार किया जाये, तो भी ऐसी स्थिति में अंगहारों की संख्या मात्र 20 ही होती है।

एक अन्य दृष्टि से अंगहारों में प्रयुक्त होने वाले करणों का अध्ययन किया जाये, तो ज्ञात होता है, कि अंगहारों को बनाने में न्यूनतम् तीन और अधिकतम् दस करणों का प्रयोग किया गया है। उक्त तालिका से एक तथ्य यह भी उभर कर सामने आता है कि अंगहारों को बनाने के लिए 40 करणों का प्रयोग मिलता है, जिनमें से कटिछिन्न (संख्या 11) और करिहस्त (संख्या 87) का प्रयोग अधिकांश अंगहारों में किया गया है। 32 अंगहारों के निर्माण में 40 करणों का ही प्रयोग होता है, जबकि शेष 68 करणों के विषय में कोई मत या विचार प्राप्त नहीं होते। इसके साथ ही परिच्छिन्न (अंगहार सं.18) में वर्णित 'परिछिन्न करण', रेचित (अंगहार सं.27) में 'रेचित करण' तथा अपविद्ध (अंगहार सं. 04) में 'उद्वेष्टित करण' नामक करणों के नाम 108 करणों की सूची से प्राप्त नहीं होते। इस दृष्टि से अंगहारों में प्रयुक्त 40 करणों में से मात्र 37 करण ही आचार्य द्वारा बताये गये करणों की सूची से प्राप्त होते हैं तथा शेष तीन करण अप्राप्त हैं। यहाँ भरतमुनि द्वारा नृत्य और नृत्त दोनों ही स्थितियों में करण की ही बात कही है। परन्तु अन्य विद्वानों ने इसे नृत्त ही स्वीकार किया है। 'अभिनवगुप्त के मतानुसार– बिना रस विच्छेद के हस्त–पाद आदि की जो क्रिया विलासपूर्ण प्रकार से प्रस्तुत की जाती है, उसका पूर्ण नाम नृत्त–करण है। व्यवहार में इसे पूरा न कहकर इसके एक भाग को ही अभीहित किया जाता है।'[9]

उक्त अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से कहा जाता सकता है, कि शेष करणों के माध्यम से अन्य अंगहारों की भी कल्पना की जा सकती है तथा भरत एवं अन्य नाट्याचार्यों द्वारा किये गये अध्ययनों के आधार पर अन्य करणों की भी उत्पत्ति संभव है। इन सभी के माध्यम से असंख्य करण एवं अंगहारों की कल्पना की जा सकती है, ऐसा कहा जा सकता है।

'इन अंगहारों में से सोलह चतुरस्त्र ताल और सोलह त्र्यस्त्र ताल में निबद्ध है। इन दो स्थूल विभागों के अतिरिक्त अवान्तर सोलह विभागों में विभक्त इन अंगहारों का पूर्वरंग के बर्हिवनिकागत उत्थापन से प्ररोचना तक के अंगों में प्रयोग के कारण भी बत्तीस प्रकार हो जाते हैं, यह कुछ आचार्यों का मत है। अन्य आचार्यों का मत है कि चार नर्तकियों से प्रत्येक के प्रयोग से चार प्रकार बनकर फिर पिण्डीबंध,

रेचक, न्यास तथा अपन्यास प्रकारों से युक्त होने पर अंत में बत्तीस प्रकार बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे आचार्यों का मत है कि अंग तथा वस्तु से निबद्ध गीतों की वस्तु तीन प्रकार की होती है, जिनमें वर्धमानक के नौ प्रकार, आसारित के चार प्रकार और पाणिका का एक प्रकार होता है। इस प्रकार ब्रह्मगीति की विचित्रता बत्तीस प्रकार से सुशोभित होती है तथा उन्हीं के प्रयोगों को अपने स्वरूप में रखने वाले होने के कारण अंगहारों की संख्या भी 32 मानी गई है।'[10]

'करण और अंगहारों के बाद 'नृत्त' का महत्वपूर्ण तत्व है– 'रेचक' करण–अंगहार के रंगरूप में तो रेचक का प्रयोग होता ही है, इनके अतिरिक्त भी नृत्त और नृत्य के विभिन्न प्रयोगों में इसकी योजना की जाती है। सुकुमार गति और वाद्यगत प्रधानता रखने वाले प्रयोग भी रेचक से युक्त रहते हैं। इन कारणों से रेचक का स्वतन्त्र महत्व माना गया है। रेचन या रेचित प्रक्रिया अंगों के पृथक्–पृथक् व्यवस्थित रूप में वलन या चक्करदार घुमाव को कहते हैं अथवा इसे रेचक इसलिए भी कहते हैं कि यह ऊपर की ओर उठाव लेकर गतिशील होता है। इसके चार प्रकार हैं– पादरेचक, कटिरेचक, हस्त या कर रेचक और ग्रीवा रेचक।'[11]

भरत के मतानुसार– 'इन रेचक तथा अंगहारों से युक्त शिव को नृत्य करते देख पार्वती ने भी सुकुमार प्रयोगों से युक्त एक नृत्य किया और इस नृत्य की मृदंग, भेरी, पटह, भांड, डिण्डिम, गोमुख, पणव तथा दर्दुर नामक वाद्यों द्वारा संगत की गई। ऐसा होने पर दक्ष के यज्ञ के घ्वंस के पश्चात् किसी संध्या में भगवान शिव ने अनेक लय तथा ताल के अनुसार अंगहार से युक्त होकर नृत्य किया।'[12] 'इस प्रकार भगवान शिव ने रेचक, अंगहार तथा पिण्डीबंधों के सृजन कार्य को पूर्ण करने के पश्चात् उन्हें तण्डु मुनि को प्रदान कर दिया, तब उन तण्डु मुनि ने उन्हें गान तथा भांड वाद्य (वाद्य तथा गीत) से ठीक प्रकार से संयुक्त कर जिस नृत्त प्रयोग की सर्जना की वह ताण्डव नाम से प्रसिद्ध हुआ। (तण्डु के द्वारा उद्भावित होने के कारण उसकी प्रसिद्धी ताण्डव नाम से हुई।)'[13]

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि नाट्यचार्यों ने हस्त मुद्राओं एवं पाद–विन्यास की सहायता से करणों का निर्माण कर, विभिन्न करणों की सहायता से अंगहार, तत्पश्चात् रेचक, पिण्डीबंध आदि का निर्माण कर नृत्त एवं नृत्य की उत्पत्ति की, जो सभी शास्त्रीय नृत्यों के मूल में समाहित है। परन्तु प्रतीत होता है, कि 108 करणों से 32 अंगहार बनाने की बात, जो प्रायः नृत्यकला के क्षेत्र में बहुप्रचलित है, तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती। इसी प्रकार अंगहारों के अध्ययन में तीन अन्य करण भी उल्लिखित प्राप्त होते हैं, इस दृष्टि से नाट्यशास्त्र में करणों की संख्या 111 होनी चाहिए। साथ–ही–साथ जिन करणों का प्रयोग अंगहारों में नहीं हुआ है, से नये अंगहारों के निर्माण की संभानाओं को जन्म देता है। अतः नाट्यशास्त्र में वर्णित करण एवं अंगहार विषयक तथ्यों पर विस्तृत शोध अपेक्षित है।

◆

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

---

[1] श्रीभरतमुनिप्रणीतं सचित्रम् नाट्यशास्त्रम्, संपादक एवं व्याख्याकार – श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1999, भाग–1, श्लोक–30–33, पृ.89
[2] श्रीभरतमुनिप्रणीतं सचित्रम् नाट्यशास्त्रम्, संपादक एवं व्याख्याकार – श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1999, भाग–2, अध्याय–8, श्लोक–15, पृ.6
[3] श्रीभरतमुनिप्रणीतं सचित्रम् नाट्यशास्त्रम्, संपादक एवं व्याख्याकार – श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1999, भाग–1, अध्याय–4, श्लोक–30, पृ.89
[4] श्रीभरतमुनिप्रणीतं सचित्रम् नाट्यशास्त्रम्, संपादक एवं व्याख्याकार – श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1999, भाग–2, अध्याय–8, श्लोक–15, पृ.6
[5] डॉ.पुरू दाधीच, कथक नृत्य शिक्षा, भाग–2, पृ.160–162
[6] वाचस्पति गैरोला, अशोकमल्ल और उनका नृत्याध्याय, श्लोक : 1304–1305, पृ.331
[7] डॉ.पुरू दाधीच, कथक नृत्य शिक्षा, भाग–2, पृ.162
[8] डॉ.पुरू दाधीच, कथक नृत्य शिक्षा, भाग–2, पृ.162–164
[9] डॉ.पुरू दाधीच, कथक नृत्य शिक्षा, भाग–2, पृ.160
[10] डॉ.पुरू दाधीच, कथक नृत्य शिक्षा, भाग–2, पृ.162–164
[11] डॉ.पुरू दाधीच, कथक नृत्य शिक्षा, भाग–2, पृ.164
[12] श्रीभरतमुनिप्रणीतं सचित्रम् नाट्यशास्त्रम्, संपादक एवं व्याख्याकार – श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1999, भाग–1, अध्याय–4, श्लोक–251–253, पृ.133
[13] श्रीभरतमुनिप्रणीतं सचित्रम् नाट्यशास्त्रम्, संपादक एवं व्याख्याकार – श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1999, भाग–1, अध्याय–4, श्लोक–261–262, पृ.135

यास्मीन सिंह
कथक नृत्यांगना–रायगढ़ घराना
पीएच.डी. स्कॉलर
डी. 1/20, शासकीय आवासीय परिसर
देवेन्द्र नगर
रायपुर 492011 (छ.ग.)
मो.नं. 097550 38387
Email: kathakraigah16@gmail.com